R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-20, अङ्क-7 जुलाई 2020 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

जुलाई का E - अंक

जन्मकल्याणक : शुद्धता का उद्गम

भारत देश के बिहार प्रान्त के कुण्डग्राम नामक नगर में बालक महावीर का जन्म होनेपर सम्पूर्ण लोक में एक क्षण के लिए हर्ष का वातावरण छा गया। सौधर्म इन्द्रका आसन कम्पायमान हो उठा। वे ऐरावत हाथी पर बैठकर असंख्य देव-देवियों के साथ वहाँ जाते हैं। इन्द्राणी प्रसूतिगृह में जाकर सर्व प्रथम बाल तीर्थंकर के दर्शन करके, माता के पास मायामयी शिशु को सुलाकर, वहाँ से बाल तीर्थंकर को लाकर सौधर्म इन्द्र को सौंप देती हैं। वे बाल तीर्थंकर को ऐरावत हाथी पर बैठाकर सुमेरुपर्वत पर ले जाते हैं और पाण्डुकशिला पर पवित्र क्षीरसागर के प्रासुक जल से प्रभु का अभिषेक करते हैं। पश्चात् इन्द्राणी वस्त्राभूषण आदि पहनाकर बाल तीर्थंकर का शृंगार करती है। सौधर्म इन्द्र खुशी में ताण्डवनृत्य करने लगते हैं।

आया पंच कल्याणक महान! हिल-मिल नृत्य करो!!

तीर्थधाम मङ्गलायतन आपका हार्दिक स्वागत करता है

आपका सहयोग अपेक्षित है

1. भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन	
एक वर्ष के लिए (एक विद्यार्थी)	25,000/–
सम्पूर्ण अध्ययन काल के लिए (एक विद्यार्थी)	1,00,000/–
2. अतिथि भोजनशाला	
एक माह का भोजन	2,00,000/–
एक दिन का भोजन (जलपान सहित)	15,000/–
एक समय का भोजन	6,100/–
एक समय का जलपान	3,100/–
3. तीर्थधाम मङ्गलायतन : ध्रुवपूजन तिथि	
सभी जिनमन्दिर	5,100/–
प्रत्येक जिनमन्दिर हेतु ध्रुवपूजन तिथि	1,100/–
4. 'मङ्गलायतन' मासिक पत्रिका	
अपनी ओर से एक अंक के प्रकाशन हेतु	21,000/–
आजीवन सदस्यता	500/–
5. 'मङ्गल वात्सल्य निधि'	
आजीवन सदस्यता (प्रति माह)	1,000/–

आप अपनी सहयोग राशि सीधे बैंक में भी जमा करवा सकते हैं।

नाम – **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़**

बैंक – **पंजाब नेशनल बैंक** ब्रांच – **रेलवे रोड, अलीगढ़**

A/c No. - 1825000100065332 IFSC - PUNB0001000

PAN - AABTA0995P

नोट – भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-20, अङ्क-7 (वी.नि.सं. 2546; वि.सं. 2076) जुलाई 2020

मोक्षसप्तमी के उपलक्ष्य में

आओ नी आओ नी भविजन...

आओ नी आओ नी भविजन... आओ नी आओ नी भविजन
सिद्धक्षेत्र के तले, सिद्धप्रभु से मिलें... निज अनुभव रस पान करें।
आओ नी आओ नी भविजन।टेक॥

मधुवन की पावन वसुधा से... 2
मंगल आमन्त्रण आया... 2
सिद्धों के संग मिल जाने को...2 भव्यों को है बुलवाया... 2
अष्टकर्म के बंधन छूटे.... 2 भव भव से
निज अनुभव रस पान करें... ॥1॥

मंगलकारी प्रभुकल्याणक.... 2
भव्यों के कल्याण स्वरूप..... 2
जिन दर्शन है उनका सच्चा...2 प्रभु सम जो देखे निज रूप...2
चिरभावी तब मोह पलाय... 2 पल भर में
निज अनुभव रस पान करें... ॥2॥

यदि दुख से परिमुक्ति चाहो... 2
तो श्रामण्य स्वीकार करों... 2
इन्द्रिय सुख तो सदा दुखमय... 2 अब इनका परिहार करो... 2
भव सागर से पार चलो अब... 2 क्षण भर में
निज अनुभव रस पान करें.... ॥3॥

साभार :- मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
स्व. पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्रीमान् भीमजी
भगवानजी शाह
हस्ते **श्री विजेन वी. शाह,**
फ्लैट नं. - 9, मैपलेवुड कोर्ट,
31-इस्टवरी एवेन्यु,
नार्थवुड मिडिलसेक्स
- एच.ए. 63 एल.एल.
(यू.के.)

क्या - कहाँ

परम कल्याण का मूल 5
श्री समयसार नाटक पर 16
आचार्यदेव परिचय शृंखला
श्री देवसेनाचार्य 26
श्री इन्द्रनन्दि 27
समाचार-दर्शन 28

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

परम कल्याण का मूल – सम्यग्दर्शन प्रगट होने की भूमिका

(वीर सं. 2476 भाद्रप्रद शुक्ला 4 शुक्रवार)

जिसे अपने आत्मा का हित करना हो, उसे सर्व प्रथम क्या करना चाहिए – वह बात चल रही है। जो आत्मार्थी है अर्थात् जिसे अपना कल्याण करने की भावना है, उसे देह से भिन्न चैतन्यमूर्ति आत्मा कौन है, वह जानना चाहिए। आत्मा को जानने के लिए प्रथम नवतत्त्वों का ज्ञान करना चाहिए। उन नवतत्त्वों में प्रथम जीव और अजीव – यह दो प्रकार के तत्त्व अनादि-अनंत हैं, किसी ने उन्हें बनाया नहीं है और न कभी उनका नाश होता है। जीव और अजीव यह दो स्वतंत्र तत्त्व हैं और उन दो के संबंध से दोनों की अवस्था में सात तत्त्व होते हैं। आत्मा में अपनी योग्यता से पुण्य, पापादि सात प्रकार की अवस्था होती है और उसके निमित्तरूप अजीव में भी वे सात प्रकार होते हैं।

आत्मा चैतन्यवस्तु त्रिकाली है, किन्तु उसे भूलकर अवस्था में मिथ्यात्व और राग-द्वेष से अज्ञानी जीव अनादिकाल से बँधा हुआ है, वह बंधनभाव आत्मा की योग्यता से है, किसी दूसरे ने उसे बंधन नहीं किया है। जीव को वर्तमान अवस्था में यदि भावबंधन न हो तो आनंद का प्रगट अनुभव होना चाहिए, किन्तु आनंद का प्रगट अनुभव नहीं है क्योंकि वह अपनी पर्याय में विकार के भावबंधन से बँधा हुआ है। स्फटिक के उज्ज्वल-स्वच्छ स्वरूप में जो लाल-काली झलक पड़ती है, वह उसका मूल स्वरूप नहीं है, किन्तु स्फटिक का विकार है, उपाधि है। उसीप्रकार जीव का स्वच्छ चैतन्यस्वभाव है, उसकी अवस्था में जो पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह उसका स्वरूप नहीं किन्तु विकार है, बंधन है। विकारभाव जीवबंध है और उसमें निमित्तरूप जड़कर्म हैं, वह अजीव बंध हैं। इसप्रकार जीव-अजीव दोनों की अवस्था भिन्न-भिन्न है। यदि परनिमित्त की अपेक्षा के बिना मात्र आत्मा के स्वभाव से विकार हो, तब तो वह स्वभाव हो जाये और कभी दूर न हो सके। किन्तु विकार उस जीव की अवस्था की क्षणिक योग्यता है और उसमें द्रव्यकर्म निमित्तरूप है। निमित्त के आश्रय से विकार होता है, स्वभाव के आश्रय से विकार या बंधनभाव नहीं होता।

(यहाँ तक आठ तत्त्वों का विवेचन हुआ, अब नवमें तत्त्व का विवेचन होता है)

नवमां मोक्षतत्त्व है। जीव की पूर्ण पवित्र सर्वज्ञ वीतरागी आनंद पर्याय, सो मोक्ष है। उस मोक्षरूप होने की योग्यता जीव की अवस्था है और जड़कर्म का अभाव उसमें निमित्तरूप हैं। जीव में पवित्र मोक्षभाव प्रगट हुआ, वहाँ कर्म अपने आप छूट गये। जीव और अजीव दो त्रिकाली तत्त्व हैं, उन्हें और उनकी पर्याय में सात तत्त्वरूप परिणमन होता है – इसप्रकार नवों तत्त्वों को पहिचानना चाहिए।

मोक्षरूप होने की योग्यता जीव की है और जड़कर्म का छूट जाना, वह निमित्त है, वह अजीव–मोक्ष है। इसप्रकार यहाँ प्रथम तो मोक्षतत्त्व की पहिचान कराई है। अंतरस्वभाव के आश्रय से जीव की परिपूर्ण पवित्र दशा प्रगट हो, उसे मोक्ष कहते हैं और अजीवकर्म छूट जाने –रूप पुद्गल की अवस्था को मोक्ष कहा जाता है। मोक्षतत्त्व को जान लिया, उससे मोक्ष नहीं हो जाता, किन्तु मोक्ष आदि नवों तत्त्वों को जान लेने के पश्चात् उस भेद का आश्रय छोड़कर अंतर के अभेदस्वभाव के आश्रय से मोक्षदशा प्रगट होती है।

इस प्रकार जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष – इन नवतत्त्वों की पहिचान कराई, इन नवतत्त्वों को पहिचानने का प्रयोजन क्या है, वह अब कहेंगे। नवतत्त्वों को पहिचानकर अंतर में अभेद चैतन्यमूर्ति स्वभाव का शुद्धनय से अनुभव करना ही प्रयोजन है और ऐसा अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन है, वह कल्याण का मूल है।

देखो, चैतन्य की प्रतीति अनंत काल में कभी नहीं की, अनादि काल से संसार–परिभ्रमण कर रहा है, उसमें चैतन्य की समझ का मार्ग लेने के अतिरिक्त अन्य सब बाह्य साधन किये हैं, किन्तु संसार परिभ्रमण दूर नहीं हुआ, क्योंकि चैतन्य को समझना ही संसार परिभ्रमण को दूर करने का उपाय है, वह उपाय शेष रहा गया है। श्रीमद् राजचंद्रजी निम्न काव्य द्वारा 'कौन सा साधन शेष रह गया है' वह बतलाते हुए कहते हैं कि –

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो।
वनवास रह्यो, मुख मौन रह्यौ, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।।

☆ ☆ ☆

वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो,
अब क्यों न विचारत है मनसें, कछु और रहा उन साधन सें।।

त्याग, वैराग्य आदि सभी साधन किये, किन्तु चैतन्यस्वरूपी अपना आत्मा कौन है, उसे समझनेरूप सच्चा साधन शेष रह गया, इसलिए जीव किंचित् कल्याण प्राप्त न कर सका।

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि हे भव्य आत्माओ ! आत्मा के अभेदस्वरूप का अनुभव करते हुए बीच में नवतत्त्वों की भेदरूप प्रतीति आये बिना नहीं रहती, किन्तु उन नवतत्त्वों के भेदरूप विकार का ही आश्रय मानकर मत रुकना, नवतत्त्वों के भेदरूप विकार के आश्रय से रुकने में सम्यक् आत्मा अनुभव में नहीं आता, किन्तु उस भेद का आश्रय छोड़कर रगामिश्रित विचार का अभाव करके, अभेद स्वभावसन्मुख होकर शुद्ध आत्मा का निर्विकल्प अनुभव और प्रतीति करने से सम्यक्श्रद्धा होती है, वह आत्मा के कल्याण का उपाय है।

अवस्था में जीव की योग्यता और अजीव का निमित्तपना – ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध यदि न हो तो सात तत्त्व ही सिद्ध नहीं होते। जीव और अजीव की अवस्था में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, उस दृष्टि से देखने से नवतत्त्वों के भेद विद्यमान हैं और यदि मात्र चैतन्यमूर्ति अखण्ड जीवतत्त्व को लक्ष में लें तो द्रव्यदृष्टि में निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी न होने से, नवतत्त्वों के भेद नहीं पड़ते, इसलिए शुद्ध चैतन्यस्वभाव की दृष्टि से देखने पर नवतत्त्व अभूतार्थ हैं और एक चैतन्य परमतत्त्व ही प्रकाशमान है। यद्यपि वर्तमान निर्मल पर्याय है अवश्य, किन्तु वह अभेद में मिल जाती है अर्थात् द्रव्य और पर्याय के भेद का विकल्प उस जीव के नहीं है। ऐसा अनुभव ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है।

जीव के भावरूप सात तत्त्व जीव में हैं और उसमें निमित्तरूप जड़ की अवस्था में सात तत्त्व हैं, वे अजीव में हैं। ऐसे सात प्रकार अकेले शुद्ध जीव में या अकेले शुद्ध अजीव में नहीं होते। इन नवतत्त्वों का अनेक-अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। उसीप्रकार नवतत्त्वों का निर्णय किए बिना आत्मा का स्वरूप नहीं समझा जा सकता और अपना स्वरूप क्या है, उसे समझे बिना चैतन्यमूर्ति की प्राप्ति नहीं होती।

'अमूल्य तत्त्वविचार' में श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि –

'हुं कोण छुं ? क्यांथी थयो ? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं ?
कोना संबंधे बलगणा छे ? राखुं के अे परिहरुं ?
अेना विचार विवेकपूर्वक शांत भावे जो कर्यां,
तो सर्व आत्मिकज्ञाननां सिद्धान्त तत्त्वो अनुभव्यां।'

इसमें जीव के स्वरूप का विचार करके निर्णय करना कहा है। जीव संबंधी विचार करने से नवों तत्त्वों का विचार उसमें आ जाते हैं। मैं चैतन्यस्वरूप जीव हूँ, शरीरादि अजीव हैं, वह मैं नहीं हूँ, पुण्य-पाप-आस्रव और बंध – यह भाव दुःखरूप हैं, संवर-निर्जराभाव सुख के कारण हैं, वह धर्म हैं, मोक्ष पूर्णसुखरूप निर्मलदशा है। इसप्रकार एक जीव संबंधी विचार करने से नवों तत्त्व आ जाते हैं।

जीव और अजीव तो स्वतंत्र तत्त्व हैं और उनमें से जीव की अवस्था में पुण्य-पाप-आस्रव-संवर-निर्जरा-बंध और मोक्ष ऐसे सात प्रकार अपनी योग्यता से पड़ते हैं, तथा अजीव तत्त्व उनमें निमित्तरूप है, उसकी अवस्था में भी पुण्य-पाप आदि सात प्रकार पड़ते हैं। एक आत्मा ही सर्व व्यापक है और दूसरा सब भ्रम है – ऐसा जो मानते हैं, उन्हें सात तत्त्व नहीं रहते और सात तत्त्व के ज्ञान बिना आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। सातों तत्त्वों में दो-दो बोल लागू होते हैं, एक जीवरूप है और दूसरा अजीवरूप है।

आत्मा को समझे बिना जीव का अनंतकाल बीत गया, उस अनंतकाल में अन्य बाह्य उपायों को कल्याण का साधन माना, किन्तु अन्तर में सिद्ध भगवान जैसा चैतन्यमूर्ति आत्मा विराजमान है, उसकी शरण लूँ तो कल्याण प्रगट हो – ऐसा कभी नहीं माना। पूजा, भक्ति, व्रत, उपवास आदि के शुभराग को और क्रियाकाण्ड को मुक्ति का साधन माना, किन्तु यह सब राग तो संसार का कारण है; राग आत्मा की मुक्ति का कारण नहीं है। ऐसा समझकर क्या करना ? नवतत्त्वों को और आत्मा के अभेदस्वभाव को जानकर आत्मस्वभावोन्मुख होना, उसी का आश्रय करना, सो धर्म है और वही कल्याण है।

जो जीव विषय-कषायों में ही डूबा हुआ है और तत्त्व के विचार का भी अवकाश नहीं लेता, वह तो पाप में पड़ा है, उसकी यहाँ बात नहीं है। किन्तु, मुझे

आत्मा का कल्याण करना है – ऐसी जिज्ञासा जिसे जागृत हुई है, विषय-कषायों से कुछ पीछे हटकर जो नवतत्त्वों का विचार करता है और अंतर में आत्मा का अनुभव करना चाहता है, उसकी यह बात है। नवतत्त्वों का विचार पाँच इन्द्रियों का विषय नहीं है, पाँच इन्द्रियों के अवलम्बन से नवतत्त्वों का निर्णय नहीं होता, इसलिए नवतत्त्वों का विचार करनेवाला जीव पाँच इन्द्रियों के विषयों से विमुख हो गया है। अभी मन का अवलम्बन है, किन्तु वह जीव मन के अवलम्बन में नहीं रुकना चाहता, वह तो मन का भी अवलम्बन छोड़कर अभेद आत्मा का अनुभव करना चाहता है। स्वलक्ष से राग का अस्वीकार और स्वभाव का आदर करनेवाला जो भाव है, वह निमित्त और राग की अपेक्षा रहित भाव है, उसमें भेद के अवलम्बन की रुचि छोड़कर अभेदस्वभाव का अनुभव करने की रुचि का जो बल है, वह निश्चय सम्यग्दर्शन का कारण होता है।

कोई प्रश्न करे कि नव तत्त्वों के विचार तो पहले अनंतबार किये हैं ? तो उससे कहते हैं कि भाई, पहले जो नवतत्त्वों के विचार किये, उनकी अपेक्षा यह कुछ अन्य प्रकार की बात है। पहले नवतत्त्व के विचार किये, वे अभेदस्वरूप के लक्ष बिना किये हैं और यहाँ तो अभेदस्वरूप के लक्षसहित बात है। पहले मात्र मन के स्थूल विषयों से नवतत्त्वों के विचाररूप आंगन तक जो आत्मा अनंत बार आया है, किन्तु यहाँ से आगे विकल्प तोड़कर ध्रुव चैतन्य में एकत्व करने की अपूर्व समझ क्या है, वह नहीं समझा; इसलिए भवभ्रमण बना रहा, किन्तु यहाँ तो ऐसी बात नहीं ली है। यहाँ तो अपूर्व शैली से कथन है कि आत्मा का अनुभव करने के लिए जो नवतत्त्वों के विचार तक आया है, वह नवतत्त्वों का विकल्प तोड़कर अभेद आत्मा का अनुभव करता ही है। नवतत्त्वों के विचार तक आकर लौट आये – ऐसी बात यहाँ है ही नहीं।

निश्चय के अनुभव में तो नवतत्त्व आदि व्यवहार अभूतार्थ है, परन्तु निश्चय का अनुभव प्रगट करने की पात्रतावाले जीव को ऐसा ही व्यवहार होता है, इससे विरुद्ध दूसरा व्यवहार नहीं होता। व्यवहार को सर्वथा अभूतार्थ मानकर उसमें गड़बड़ करे और तत्त्व का निर्णय न करे तो वह तो अभी परमार्थ के आंगन में भी नहीं आया। कुतत्त्वों की मान्यता परमार्थ का आंगन नहीं है किन्तु सच्चे तत्त्वों की

मान्यता परमार्थ का आंगन है। जैसे किसी को ब्राह्मण के घर में जाना हो और भंगी के आंगन में जाकर खड़ा हो जाये तो वह ब्राह्मण के घर में प्रवेश नहीं कर सकता, किन्तु यदि ब्राह्मण के ही आंगन में खड़ा हो तो ब्राह्मण के घर में प्रवेश कर सकता है। उसी प्रकार सर्वज्ञ प्रभु के कहे हुए चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा का अनुभव करने के लिए सर्वज्ञकथित इन नवतत्त्व आदि का निर्णय करना, सो प्रथम अनुभव का आंगन है, उसका जो निर्णय नहीं करते और कुतत्त्वों को मानते हैं, वे तो अभी सर्वज्ञभगवानकथित आत्मस्वभाव के अनुभव के आंगन में भी नहीं आये हैं, उनका अनुभवरूपी घर में प्रवेश तो कहाँ से होगा ? प्रथम रागमिश्रित विचार से नवतत्त्व आदि का निर्णय करने के पश्चात् अभेद ज्ञायकस्वभाव की ओर उन्मुख होकर अनुभव करने से वे समस्त भेद अभूतार्थ हैं।

सच्चे नवतत्त्वों की पहिचान में सुदेव-गुरु-शास्त्र की और कुदेवादि की पहिचान भी आ जाती है। आस्रव और बंधतत्त्व की पहिचान में कुदेवादि की पहिचान आ जाती है। नवतत्त्वों के स्वरूप को विपरीतरूप से बतलायें, वे सब कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र हैं। संवर और निर्जराभाव, सो निर्मल दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग है, साधक भाव है। आचार्य, उपाध्याय और साधु - वे गुरु हैं, उनका तथा ज्ञानी धर्मात्माओं का स्वरूप संवर-निर्जरा में आ जाता है। मोक्ष आत्मा की पूर्ण निर्मलदशा है, अरहंत और सिद्ध परमात्मा सर्वज्ञ वीतरागदेव हैं, उनका स्वरूप मोक्षतत्त्व में आ जाता है। इसप्रकार नवतत्त्वों में पंचपरमेष्ठी आदि का स्वरूप भी आ जाता है। नवतत्त्वों में सम्पूर्ण विश्व के पदार्थ आ जाते हैं। नवतत्त्वों के अतिरिक्त दूसरा कोई तत्त्व जगत में नहीं है।

यहाँ कहा हुआ व्यवहार सम्यग्दर्शन का आंगन है। कुदेवादि के आंगन में खड़ा हो, वह तो अंतर में आत्मा के घर में प्रवेश नहीं कर सकता। आत्मा के घर में प्रवेश करनेवाले को नवतत्त्व की श्रद्धारूप आंगन बीच में आता है। जिसप्रकार भंगी के आंगन में खड़ा हुआ व्यक्ति ब्राह्मण के घर में प्रवेश नहीं कर सकता किन्तु ब्राह्मण के आँगन में खड़ा हुआ ही ब्राह्मण के घर में प्रविष्ट हो सकता है। उसीप्रकार आत्मा के अनुभव में जाने के लिए नवतत्त्वरूप आंगन समझना।

यहाँ आचार्यदेव ने परमार्थ आत्मा के अनुभव के निमित्तरूप से नवतत्त्वों के

विकल्परूप व्यवहार का वर्णन किया है। यह व्यवहार-निमित्त अपनी पर्याय ही है। अनुभव से पूर्व बीच में ऐसी पर्याय हुए बिना नहीं रहती और सम्यग्दर्शन के निमित्तरूप से जो पंचेन्द्रियपना, देव-गुरु-शास्त्र आदि का वर्णन आता है, वे तो बाह्य संयोगरूप निमित्त हैं, वे तो स्वयं होते हैं, उनमें जीव का वर्तमान प्रयत्न नहीं है और यह नवतत्त्वों की श्रद्धारूप व्यवहार तो अपने वर्तमान प्रयत्न से होता है, इसलिए इस अध्यात्मग्रंथ में सम्यग्दर्शन के निमित्तरूप से उसी की बात ली है। इस समयसार में अत्यन्त गूढ़ता भरी है।

☆ ☆ ☆

अब, नवतत्त्वों को जानकर परमार्थ सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिए क्या करना चाहिए, उस संबंध में आचार्यदेव विशेष स्पष्टीकरण करते हैं, प्रथम तो सामान्यरूप से बात की, अब वह बात विशेषरूप से समझाते हैं -

'बाह्य दृष्टि से देखा जाये तो जीव-पुद्गलादि की अनादि बंधपर्याय के समीप जाकर एकरूप से अनुभव करने पर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं और एक जीवद्रव्य के स्वभाव के निकट जाकर अनुभव करने से वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं (जीव के एकाकार स्वरूप में वे नहीं हैं) इसलिए इन नवतत्त्वों में भूतार्थनय से एक जीव ही प्रकाशमान है।' अज्ञानी को नवतत्त्वों में जीव और अजीव एक होकर परिणमित होते हैं - ऐसा स्थूल दृष्टि से लगता है, किन्तु ज्ञानी तो नवों तत्त्वों में जीव और अजीव का पृथक्-पृथक् परिणमन है - ऐसा जानते हैं। ज्ञानी अंतरदृष्टि से जीव-अजीव को पृथक्-पृथक् परिणमित होता हुआ देखते हैं - यह बात फिर लेंगे।

जिसे जीव-अजीव का भेदज्ञान नहीं है, ऐसा अज्ञानी जीव नवतत्त्वों के विकल्प से जीव-पुद्गल की बंधपर्याय के निकट जानकर अनुभव करता है, अखण्ड चिदानन्द चैतन्य की एकता को चूककर बाह्य संयोग को देखता है, बाह्य लक्ष से आत्मा और कर्म की अवस्था का एकरूप अनुभव करने से तो नवतत्त्व भूतार्थ हैं-विद्यमान हैं, व्यवहारनय से देखने पर पर्याय में नवतत्त्वों के विकल्प होते हैं, किन्तु जिसे मात्र नवतत्त्वों का भूतार्थपना ही भासित होता है और एकरूप चैतन्यस्वभाव का भूतार्थपना भासित नहीं होता, वह मिथ्यादृष्टि है। जीव-पुद्गल

के संबंध का लक्ष छोड़कर, मात्र शुद्ध जीवतत्त्व को ही लक्ष में लेकर अनुभव करने से मात्र भगवान आत्मा ही शुद्ध जीवरूप से प्रकाशमान है और नवतत्त्व अभूतार्थ हैं, ऐसा अनुभव करना, सो सम्यग्दर्शन है। अभेद आत्मा की श्रद्धा करने से पूर्व अर्थात् धर्म की प्रथम दशा होने से पूर्व जिज्ञासु जीव को नवतत्त्वों का ज्ञान निमित्तरूप से होता है। नवतत्त्व सर्वथा हैं ही नहीं – ऐसा नहीं है।

आत्मा और कर्म के संबंध से होनेवाले नवतत्त्वों की दृष्टि छोड़कर मात्र ज्ञायक की दृष्टि से स्वभावसन्मुख जाकर अनुभव करना, सो सम्यग्दर्शन है। जिसप्रकार अकेले पानी के प्रवाह में भंग नहीं पड़ता, किन्तु बीच में नाले के निमित्त से उसके प्रवाह में भंग पड़ता है, उसीप्रकार यदि कर्म के साथ के संबंध के लक्ष से जीव का विचार किया जाये तो नवतत्त्वों के भेद विचार में आते हैं, किन्तु उस निमित्त का लक्ष छोड़कर मात्र चैतन्यस्वभाव को ही दृष्टि में लिया जाये तो उसमें भंग–भेद नहीं पड़ते, वह एक ही प्रकार का अनुभव में आता है।

और जिसप्रकार अकेले पानी में मीठा, खट्टा या खारा – ऐसे भेद नहीं पड़ते, मीठा, खट्टा या खारा – ऐसे जो भेद पड़ते हैं, वे तो शक्कर, निंबू अथवा नमक आदि परनिमित्त के संग की अपेक्षा से होते हैं, निमित्त के संग की अपेक्षा से देखने पर पानी में वे भेद भूतार्थ हैं, किन्तु अकेले पानी के स्वभाव को देखने से उसमें मीठा, खट्टा या खारा ऐसे भेद नहीं पड़ते, इसलिए वे भेद अभूतार्थ हैं। उसीप्रकार आत्मा में मात्र स्वभाव की दृष्टि से देखने पर उसमें भेद नहीं है, किन्तु जड़कर्म के संयोग की अपेक्षा से देखने पर आत्मा की पर्याय में बंध, मोक्ष आदि सात प्रकार होते हैं, पर्यायदृष्टि से वे भेद, भूतार्थ हैं। और यदि मात्र आत्मा के त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि से अनुभव किया जाये तो उसमें बंध, मोक्ष आदि सात प्रकार नहीं हैं, इसलिए वह अभूतार्थ है। इसलिए स्वभावदृष्टि से तो नवतत्त्वों में एक भूतार्थ जीव ही प्रकाशमान है, उसमें एक अभेद जीव का अनुभव है और वही परमार्थ सम्यग्दर्शन का विषय है। ऐसा समझे बिना अनंतकाल में जो कुछ किया उससे परिभ्रमण ही हुआ है, एक भव भी कम नहीं हुआ। यह अपूर्व प्रतीति करना ही भवभ्रमण से बचने का उपाय है।

नवतत्त्व कहाँ रहते हैं ? जीव और अजीव तो स्वतंत्र तत्त्व है और उनके

संबंध से सात तत्त्व होते हैं, उनमें जीव के सात तत्त्व जीव की अवस्था में रहते हैं और अजीव के सात तत्त्व अजीव की अवस्था में रहते हैं। किन्तु अज्ञानी को उन दोनों की भिन्नता का भान नहीं है, इसलिए मानो जीव और अजीव दोनों एकमेक होकर परिणमित होते हों, ऐसा उसे लगता है। अज्ञानी भिन्न अखण्ड चैतन्यतत्त्व को चूककर जड़ और चेतन को एक मानता है और इसी से पर्यायबुद्धि में वह अनादि से नवतत्त्वों का ही भूतार्थरूप से अनुभव कर रहा है, किन्तु स्वभावोन्मुख होकर एकरूप स्वभाव का अनुभव नहीं करता। मुक्तस्वभाव की दृष्टि से तो आत्मा एकरूप है, उसमें नवतत्त्व नहीं हैं, किन्तु बाह्य संयोगी दृष्टि से-वर्तमान दृष्टि से-व्यवहारदृष्टि से देखा जाये तो नवतत्त्व भूतार्थ दिखलाई देते हैं और यदि वर्तमान पर्याय को स्वभाव में एकाग्र करके वर्तमान में स्वभाव को देखें तो नवतत्त्व अभूतार्थ हैं और अकेला ज्ञायक आत्मा ही अनुभव में आता है।

आचार्य भगवान कहते हैं कि अखण्ड ज्ञायक वस्तु की दृष्टि से तो आत्मा में एकत्व ही है और उसके आश्रय से एकत्व की ही उत्पत्ति होती है। यद्यपि पर्याय में निर्मलता के प्रकार होते हैं, किन्तु वह पर्याय अभेद आत्मा में ही एकाग्र होती है, इसलिए अभेद आत्मा का ही अनुभव है।

अज्ञानी के जड़-चेतन की एकत्वबुद्धि से अनादि से नवतत्त्वों पर ही दृष्टि है, जड़ के संग से भिन्न अकेले चैतन्यतत्त्व की उसे खबर नहीं है। अहो, मुझमें अनंत गुण होने पर भी मैं अभेद स्वभावी एक वस्तु हूँ। ज्ञायकस्वरूप हूँ - ऐसा अनुभव करना, सो परमार्थ सम्यग्दर्शन है। अभेद आत्मा के अनुभव में 'मैं ज्ञान हूँ' - ऐसे गुणभेद के विकल्प का भी अवकाश नहीं है, तब फिर नवतत्त्व के विकल्प तो कहाँ से होंगे ? अभी जो नवतत्त्वों को भी नहीं मानता, उसे तो व्यवहार धर्म भी नहीं होता और पर संयोग के निकट जाकर नवतत्त्वों का भूतार्थरूप से अनुभव करना अर्थात् एक जीव का नवतत्त्वरूप से अनुभव करना, वह भी अभी सम्यग्दर्शन नहीं है। सम्यग्दर्शन किसप्रकार है, वह अब कहते हैं -

अंतर में चैतन्यस्वभाव के निकट जाकर अनुभव करने से वे नवतत्त्व अभूतार्थ हैं और एक परम पारिणामिक ज्ञायक आत्मा ही 'भूतार्थरूप से' अनुभव में आता है, ऐसा अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन है। अभेदस्वभाव की प्रधानता से

आत्मा का अनुभव करने से वह ज्ञायकमूर्ति भगवान तो एक ही है, एकत्व छोड़कर वह नव प्रकाररूप नहीं हुआ है।

अहो ! इतनी अच्छी बात ! पात्र होकर समझे तो निहाल हो सकता है। प्रथम सत्समागम से यह बात सुने और तत्पश्चात् उसका अंतर में विचार करके निर्णय करे, तो उसका अनुभव हो। जहाँ चैतन्य के ओर की मुख्यता हुई, वहाँ अभेद चैतन्य की दृष्टि में रहता है, नव भेदों का विकल्प आये, उसकी मुख्यता नहीं है, इसलिए वह अभूतार्थ है। मैं जीव, चैतन्य परिपूर्ण हूँ-एकरूप हूँ, ऐसे स्वभाव की दृष्टि में एकता की ही मुख्यता है और उसमें नवतत्त्वों की अनेकता गौण हो जाती है, इसलिए शुद्धनय में नवतत्त्व अभूतार्थ हैं। आत्मा के अभेद स्वभाव की दृष्टि छोड़कर पर्याय में परसंग की अपेक्षा से देखने पर नवतत्त्व भूतार्थ हैं, किन्तु जहाँ शुद्धनय से भेद का लक्ष छूटकर अभेद स्वभाव की मुख्यता में ढला, वहाँ भेदरूप नवतत्त्वों का अनुभव नहीं है, इसलिए वे अभूतार्थ हैं और एक शुद्ध आत्मा ही भूतार्थरूप से प्रकाशमान है। ऐसे शुद्धात्मा का अनुभव होने से सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उस सम्यग्दर्शन के पश्चात् धर्मी को नवतत्त्व के विकल्प आते हैं किन्तु उनकी शुद्ध दृष्टि में उन विकल्पों की मुख्यता नहीं है-एकाकार चैतन्य की ही मुख्यता है, इसलिए वे नवतत्त्व अभूतार्थ हैं। 'अभूतार्थ' कहने से उन नवतत्त्वों के विकल्प अभेद स्वभाव की दृष्टि में उत्पन्न ही नहीं होते।

देखो तो, भगवान आत्मा की कैसी अच्छी बात है ! यह कोई बाहर की बात नहीं है किन्तु अंतर में अपने आत्मा की ही बात है। भाई, तुझे सुख और शांति चाहिए है न ! तो तू कहाँ उनकी शोध करेगा ? कहीं बाह्य में देव-गुरु-शास्त्र अथवा स्त्री, लक्ष्मी, शरीर आदि में सुख-शांति ढूँढने से वह नहीं मिल सकते। तुझे सुख-शांति चाहिए हो, सम्यग्दर्शन चाहिए हो, सत्य चाहिए हो, आत्मसाक्षात्कार की आवश्यकता हो तो नित्यस्थायी चिदानंदस्वभाव में ही उन्हें देख, अंतरस्वभाव में ढूँढने से ही वे मिल सकते हैं। सत्समागम से नवतत्त्वों को जानकर अंतरंग में भूतार्थ चैतन्यस्वभाव के निकट जाकर अनुभव करने से सम्यग्दर्शन, सुख-शांति, सत्य और आत्म साक्षात्कार होता है।

नवतत्त्वों में पहला जीवतत्त्व कितना ? सिद्ध भगवान के आत्मा जितना।

जितना सिद्ध भगवान का आत्मा है, उतना ही प्रत्येक आत्मा परिपूर्ण है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' – मेरा आत्मस्वरूप सदैव सिद्ध समान है। ऐसा आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय है अर्थात् सम्यग्दर्शन अपने आत्मा को वैसा स्वीकार करता है। सम्यग्दर्शन होने से अपने सिद्ध समान आत्मा का संवेदन होता है – अनुभव होता है। सम्यग्दर्शन का विषय अकेला आत्मा है, नवतत्त्व के भेद सम्यग्दर्शन का विषय है ही नहीं। नवतत्त्व तो सम्यग्दर्शन का बारदान है। बारदान पर से माल का अनुमान होता है कि इसे कैसा माल लेना है। जिसप्रकार कोई फटा-टूटा काला बोरा लेकर बाजार में जा रहा हो तो अनुमान होता है कि यह मनुष्य केशर लेने के लिए नहीं जा रहा है। किन्तु कोयला लेने जा रहा होगा और कोई सुन्दर काँच की बरणी लेकर बाजार में जा रहा हो तो अनुमान होता है कि यह अनाज अथवा कोयला लेने नहीं जा रहा है किन्तु केशर आदि कोई महँगी वस्तु लेने जाता है। उसीप्रकार जो जीव कुदेव-कुगुरुओं का पोषण कर रहा है अर्थात् जिसके बारदानरूप से ही कुगुरु-कुदेव हैं, तो अनुमान होता है कि वह जीव आत्मा का धर्म लेने नहीं निकला, किन्तु विषय-कषाय की पुष्टि करने निकला है। जिसके पास नवतत्त्वों की श्रद्धारूप बारदान नहीं है तो ऐसा समझना कि वह जीव आत्मा की श्रद्धारूपी माल लेने नहीं निकला है किन्तु संसार में परिभ्रमण करने का माल लेने निकला है। जो जीव शुद्ध आत्मा की श्रद्धारूपी माल लेने निकला हो, उसके पास सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के कहे हुए नवतत्त्वों की श्रद्धा ही बारदानरूप से होती है। प्रथम नवतत्त्वों को स्वीकार करने के पश्चात् उनके भेद का लक्ष छोड़कर शुद्धनय के अवलम्बन द्वारा अभेद आत्मा का अनुभव करने से धर्म प्रगट होता है। किन्तु जो कुतत्त्वों को मानता है और जिसे नवतत्त्वों का भान नहीं है, उसमें तो चैतन्य का अनुभव होने की योग्यता ही नहीं है। शरीर की क्रिया से या पूजा-दया आदि से जो धर्म मनाए, वह सन का बोरा लेकर माल लेने निकला है, उस बोरे में सम्यग्दर्शनरूपी माल नहीं रह सकता। अभी तो जो ऐसा मानता है कि जीव और शरीर एकत्रित होकर बोलने आदि का काम करते हैं, उसने व्यवहार नवतत्त्वों को भी नहीं जाना है, उसे तो यथार्थ

शेष पृष्ठ 25 पर.....

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

वस्तु के नाम

भाव पदारथ समय धन, तत्त्व वित्त वसु दर्व।
द्रविन अरथ इत्यादि बहु, वस्तु नाम ये सर्व॥35॥

अर्थः- भाव, पदार्थ, समय, धन, तत्त्व, वित्त, वसु, द्रव्य, द्रविण, अर्थ आदि सब वस्तु के नाम हैं॥35॥

काव्य - 35 पर प्रवचन

पदार्थ को भाव भी कहते हैं। समयसार में प्रथम कलश में अमृतचंद्राचार्य ने 'चित्स्वभावाय भावाय' में आत्मा को भाव कहा है।

वस्तु को समय भी कहते हैं। सम+अय् अर्थात् सम्यक् प्रकार से अपना परिणमन करने वाले छह द्रव्यों को समय कहा जाता है। जीव-जीव में परिणमन करता हैं। जड़-जड़ में परिणमन करता है। जीव, जड़ में नहीं परिणमता और जड़, जीव में नहीं परिणमता। यह दिखता है, वह पुद्गल का छोटे से छोटा परमाणु-अणु; वह भी स्वयं अपने से अपने में परिणमन करता है। यह अँगुली हिलती है, वह अपने से हिलती है, आत्मा से नहीं हिलती; फिर भी मूढ़ जीव मानते हैं कि मैं अँगुली को हिलाता हूँ।

किसी भी द्रव्य का शुद्ध परिणमन हो या अशुद्ध परिणमन हो, किन्तु वह अपने से परिणमता है, पर से नहीं; अतः उसे समय कहा जाता है। आत्मा भी समय है और परमाणु भी समय है। दोनों अपने-अपने से हैं। क्यों सेठ! ये बीड़ी के पत्ते बँधते हैं, वे अपने से बँधते हैं, तुम्हारे विकल्प से बीड़ी के पत्ते नहीं बँधते। तथा बीड़ी के बंडल जीप में भरकर एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाते हो न! वे तुम नहीं ले जाते, किन्तु उनका एक-एक परमाणु स्वयं अपने से परिणमता है, इसलिए भगवान उसे समय कहते हैं।

वस्तु को धन भी कहते हैं; क्यों ?क्योंकि छहों द्रव्य स्वयं अपनी मालिकी की (स्वामित्व की) वस्तु है, स्वयं अपना धन है, लक्ष्मी ही धन है ऐसा नहीं। जीव व्यर्थ ही पर धन का मालिक हो जाता है। जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय आदि छहों द्रव्य धन हैं।

वस्तु को तत्त्व भी कहते हैं। छहों द्रव्य तत्त्व है। द्रव्यों को तत्त्व कहो या तत्त्व को द्रव्य कहो, सब एक ही है। द्रव्य का सत्त्व, वह उसका तत्त्व है; अत: प्रत्येक द्रव्य तत्त्व है।

द्रव्य को वित्त अर्थात् लक्ष्मी भी कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य के पास अपनी-अपनी लक्ष्मी है अत: आत्मा भी वित्त है, पुद्गल भी वित्त है, कालाणु भी वित्त है, छहों द्रव्य वस्तु है अत: अपनी लक्ष्मी से सहित है। वे किसी को अपनी लक्ष्मी देते भी नहीं और लेते भी नहीं, अत: द्रव्य को वित्त भी कहते हैं।

वस्तु को द्रव्य कहते हैं- यह तो प्रसिद्ध है, गुणपर्याय के समूह को द्रव्य कहते हैं। परमाणु भी गुण का पुंज है, आत्मा भी गुण का पुंज है, आकाश भी गुण का पुंज है, इस प्रकार प्रत्येक वस्तु गुण का पुंज है, अत: उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य अर्थात् पैसा, यह बात नहीं है। स्वाध्याय मन्दिर में द्रव्यदृष्टि, वह सम्यक्दृष्टि- यह सूत्र मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है। उसे पढ़कर एक श्वेताम्बर भाई कहे कि यह क्या है ?करोड़पति यहाँ आते हैं, उनकी दृष्टि सम्यक् दृष्टि है- ऐसा लिखा होगा। अरे भाई ! जैनकुल में जन्म लिया, फिर भी द्रव्य किसे कहते हैं, यह खबर नहीं। पैसों के लिए मजदूरी कर-करके मर जाता है। मूल में तो राग-द्वेष की मजदूरी है। बाहर की मजदूरी तो जीव कर ही नहीं सकता। संकल्प-विकल्प, राग-द्वेष की मजदूरी करके मर जाता है। अहा..हा...। आत्मा कहाँ है, कैसा है, धर्म कैसे हो यह कुछ खबर नहीं और बाहर के क्रिया-कलाप में पड़ा है।

'द्रव्यदृष्टि वह सम्यक्दृष्टि'- अर्थात् त्रिकाली आनन्दकन्द आत्मा की अन्तर दृष्टि करके अनुभव करे, वह सम्यग्दृष्टि है। राग और एक समय की पर्याय की रुचि छोड़कर अनन्तगुण से अभेद आत्मा की अनुभूति करना, वह सम्यक् दृष्टि है।

वस्तु को 'द्रविन' भी कहते हैं। प्रवचनसार की 193 वीं गाथा में द्रविन शब्द से बात करके देह और द्रविन सब अध्रुव-नाशवान कहा है। कायम अविनाशी रहनेवाला द्रव्य ही ध्रुव है, एक समय की पर्याय भी ध्रुव नहीं। वहाँ द्रविन को लक्ष्मी के अर्थ में अध्रुव कहा है; किन्तु छहों द्रव्यों को भी द्रविन कहते हैं।

'अरथ' छहों द्रव्यो को अर्थ कहते हैं। अर्थ यानी वाचक का वाच्य। जैसे शक्कर शब्द वाचक है और शक्कर पदार्थ वाच्य है; वैसे ही अर्थ यानी पदार्थ-जीव भी अर्थ है, पुद्गल भी अर्थ है, और धर्मास्तिकाय आदि भी अर्थ हैं।

इस प्रकार नाटक प्रारम्भ करने से पूर्व वस्तु के भिन्न-भिन्न नाम कह दिये हैं, अतः ये शब्द आवें तो उसका अर्थ वस्तु समझना।

शुद्ध जीवद्रव्य के नाम

परमपुरुष परमेसुर परमज्योति,
परब्रह्म पूरन परम परधान है।
अनादि अनंत अविगत अविनाशी अज,
निरदुंद मुकत मुकुंद अमलान है॥
निराबाध निगम निरंजन निरविकार,
निराकार संसारसिरोमनि सुजान है।
सरवदरसी सरवज्ञ सिद्ध स्वामी सिव,
धनी नाथ ईस जगदीस भगवान है॥36॥

अर्थः- परमपुरुष, परमेश्वर, परमज्योति, परब्रह्म, पूर्ण, परम, प्रधान, अनादि, अनन्त, अव्यक्त, अविनाशी, अज, निर्द्वंद्व, मुक्त, मुकुन्द, अमलान, निराबाध, निगम, निरंजन, निर्विकार, निराकार, संसार- शिरोमणि , सुज्ञान, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, सिद्ध, स्वामी, शिव, धनी, नाथ, ईश, जगदीश, भगवान- ये सब शुद्ध जीवद्रव्य के नाम हैं॥36॥

काव्य - 36 पर प्रवचन

अब विकार और संयोग से रहित शुद्धजीव के भिन्न-भिन्न नाम कहते हैं-

ये शुद्ध जीवद्रव्य के नाम हैं, उन्हें सुनकर ऐसा नहीं कहना कि मैं तो पामर हूँ। अरे! सुन न भाई! तू पामर कैसा? पामरता तो तेरी मिथ्यामान्यता ने उधार लाई वस्तु है, वह तेरी वस्तु नहीं। पर्याय में मिथ्याबुद्धिवाले अज्ञानी पामर हैं, परन्तु कोई उनका द्रव्य पामर नही है।

भगवान आत्मा परमपुरुष है। दृष्टि का विषय -सम्यग्दर्शन का ध्येय जो शुद्ध आत्मा, वह परमपुरुष है। भले ही देह स्त्री का हो, किन्तु उसका द्रव्य तो परमपुरुष है। सभी का शुद्धद्रव्य तो परमपुरुष ही है।

आत्मा 'परमेश्वर' है, जिनकी दशा निर्मल हो गई, वे तो परमेश्वर हैं ही, किन्तु सभी का शुद्धद्रव्य भी परमात्मा ही है। अरे! तीर्थंकर हो गये, वे परमात्मा हैं। हम परमात्मा होंगे? हाँ तीर्थंकर तो अवस्था से परमात्मा हो गये, परन्तु तेरा

स्वभाव तो त्रिकाल परमात्मा है। यदि स्वभाव परमात्मस्वरूप न हो तो पर्याय में परमात्मपना कहाँ से आयेगा ? जैसे छोटी पीपल में चौसठ पहरी चरपराहट है तो वह घिसने से बाहर व्यक्त होती है, न हो तो कहाँ से आवे ? पत्थर को कितना ही घिस लो, परन्तु चरपराहट नहीं आती; क्योंकि उसमें चरपराहट है ही नहीं।

वैसे ही चैतन्यराजा में परमेश्वरपद पूरा का पूरा भरा हुआ है, परन्तु रंक होकर उसने रत्न को रोली (कचरे) में डाल दिया है। राग-द्वेष और विकल्प की दृष्टि करके विद्यमान निर्विकल्प परमेश्वरपद को भूल गया है। उसे याद दिलाते हुए संत कहते हैं कि भाई ! तू तो परमेश्वर है। पर्याय में मिथ्यात्व और अज्ञान होने से कोई द्रव्य में से परमेश्वरपना चला नहीं गया। प्रत्येक आत्मा परमेश्वर है।

'परम ज्योति' भगवान आत्मा चैतन्य के नूर का पूर है। भगवान! तू चैतन्यप्रकाश की अनन्तज्योति है। एक समय की पर्याय में संसार है, विकार है- ऐसी दृष्टि छोड़ दे और अन्दर देख तो तू तो परमज्योति से भरा हुआ है। वही तेरी वस्तु है। वही तेरा स्वधाम है। उसमें दृष्टि करने का नाम ही सम्यग्दर्शन है। वहीं से प्रथम में प्रथम धर्म की शुरूआत होती है। बाकी सब तो व्यर्थ है। यह उत्तम मनुष्यभव मिला और यदि चैतन्यस्वभाव की दृष्टि नहीं की, भव के अभाव का उपाय नहीं किया तो तेरा मनुष्यजन्म निष्फल है, व्यर्थ है। पाँच-पच्चीस लाख रुपये मिलें और बाहर में कुछ नाम हो, उससे मनुष्यजन्म की सफलता नहीं है। लोग समाजभूषण का पद दें उसमें तुम्हारी शोभा नहीं है। आत्मा स्वयं अनन्त गुण के समाज का भूषण है। तुम संख्या अपेक्षा अनन्त गुणों के स्वामी हो।

महान बात है बापू ! दुनिया से जुदी जाति की बात है। सर्वज्ञ वीतराग परमदेव की बातें दुनियां से जुदी जाति की हैं।

'परब्रह्म' उत्कृष्ट आनन्द का कंद आत्मा परब्रह्म है। पर्याय में राग-द्वेष उत्पन्न करता है, वह उसकी वस्तु नहीं। वह तो नया, कृत्रिम राग-द्वेष खड़ा करके दुःखी होता है, वह कोई स्वाभाविक वस्तु नहीं। पुण्य-पाप का विकल्प, राग, निमित्त और एक समय की पर्याय की दृष्टि छोड़कर परम आनन्दमय परब्रह्म की दृष्टि करना, वह प्रथमधर्म है, सम्यग्दर्शन है।

तारणस्वामी के शास्त्रों में बहुत आता है- अप्पा सो परम अप्पा। आत्मा हैं, वही परमात्मा है; परन्तु अज्ञानी जीव को अभी पान-बीड़ी बिना चले नहीं। इसे

यह बात बैठती नहीं, इसलिए कहता है कि हम तो पामर हैं। भाई ! तू तो अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करनेवाला है; परन्तु तुझे खबर नहीं, इसलिए तू विचारा है। वस्तुदृष्टि से तो तू पूर्ण परमब्रह्म प्रभु है। अवस्था में विकार और संसार है। वस्तु में विकार अथवा अपूर्णता नहीं।

'परमप्रधान' अर्थात् ऊँची वस्तु। सबमें ऊँची से ऊँची वस्तु आत्मा है। ऐसी वस्तु को देखकर अन्तर में दृष्टि करके बहिर्दृष्टि छोड़ने के लिए यह बात है।

भगवान आत्मा 'अनादि-अनन्त' है। जो 'है' उसकी आदि क्या ? जो 'है' उसकी उत्पत्ति कैसी ? जो 'है' उसको कौन बनावे ? भूतकाल... भूतकाल, उसकी कोई शुरूआत नहीं; वैसे ही आत्मा भी अनादि का है, उसकी कोई आदि नहीं। उसकी दृष्टि की नहीं और एक समय की पर्याय, जो कि आती-जाती है, उसकी दृष्टि करके यह जीव मिथ्यादृष्टि हो रहा है। भगवान आत्मा तो अनादि का है और अनन्तकाल तक रहनेवाला है। जो सत् है, उसका कभी नाश नहीं होता। जो 'है,' वह सर्वकाल में है....है और है... जो 'है' वह कभी नष्ट नहीं होता।

'अविगत' अर्थात् आत्मा सबको जाननेवाला है। तीनकाल-तीनलोक को तो जाने, किन्तु इससे अनन्तगुना लोक हो तो भी एक समय में जान ले- ऐसा उसका स्वभाव है। विशेष प्रकार से जानने का आत्मा का स्वभाव है। वह किसी को नहीं जाने- ऐसा नहीं बनता, किन्तु आत्मा किसी का करनेवाला नहीं है। पर को तो नहीं करता, किन्तु राग को करना भी आत्मा का स्वभाव नहीं है।

जो आत्मा को रागसहित मानता है, वही आत्मा को राग का कर्त्ता मानता है। आत्मा तो वस्तुतः जाननेवाला है। आत्मा राग का कर्त्ता भी नहीं, भोक्ता भी नहीं और राग का छोड़नेवाला भी नहीं। मैं आत्मा त्रिकाल अविगत विशेष प्रकार से सबको जानने के स्वभाववाला हूँ। मैं ज्ञान के गम्य हूँ।

अहा ! ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना, उसकी श्रद्धा कैसे हो, उसकी खबर बिना जीव ने अनन्त-काल गँवाया है। धर्म के बिना अनन्तकाल गँवाया है और धर्म के नाम पर भी अधर्म का सेवन किया है।

अविनाशी- आत्मा त्रिकाल ध्रुव अनादि- अनन्त अविनाशी है। शरीरादि विनाशीक है, परन्तु मैं तो अविनाशी आतमराम हूँ। रागादिक विनाशीक हैं और एक समय की पर्याय भी विनाशीक है। मैं एक ध्रुव अविनाशी हूँ।

'अज'- आत्मा जन्म से रहित है। आत्मा की सत्ता सदा ऐसी की ऐसी है। शरीर के संयोग और वियोग से जन्म-मरण कहे जाते हैं; परन्तु आत्मा को कभी जन्म-मरण है ही नहीं। योगसार शास्त्र में योगीन्दुदेव ने कहा है कि जन्म, यह तो कलंक है। आत्मा को शरीर का संयोग होना, वह कलंक है। जैसे हाथ या पैर में छठी अंगुली हो तो वह काटने योग्य वस्तु है, रखने योग्य वस्तु नहीं; उससे पंजा शोभता नहीं है। वैसे ही शरीर का संयोग होना आत्मा के लिए कलंकरूप है। वह रखने की वस्तु नहीं है। राग-द्वेष भी आत्मा को कलंक है। पुण्यभाव भी मैल है, कलंक है। पुण्य से प्राप्त होने वाले संयोग तो धूल हैं। वे तो आत्मा की वस्तु नहीं परन्तु पुण्यभाव भी आत्मा के कलंक है।

आत्मा 'निरद्वंद' है, उसमें दोपना नही। (आत्मा) अद्वैत चिदानन्द परमात्मा है। पुण्य-पाप, हर्ष-शोक इत्यादि द्वंद्व का उसमें अभाव है। छहढाला में आता है, वह पहले कहा न!

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ।
तोड़ी सकल जग दंद फंद, निज आतम ध्यावो।।

परन्तु इसका अर्थ नहीं करते, भाव नहीं समझे और मात्र तोते की तरह बोल जाये तो उससे कोई लाभ नहीं होता। एकरूप वस्तु में द्वंद्व कैसा ?आत्मा में संसार कैसा ? राग-द्वेष द्वंद्व-फंद आत्मा में है ही नहीं, अत: भगवान आत्मा को निरद्वंद्व कहा है।

'मुक्त' आत्मा तो मुक्तस्वरूप ही है। पर्याय में बंध होता है और मुक्ति होती है, उससे रहित आत्मा तो त्रिकाल मुक्त स्वरूप ही है। सिद्धदशा होती है, उसमें पर्याय में मुक्ति होती है, किन्तु द्रव्य तो सदा मुक्त ही है। समयसार की पन्द्रहवीं गाथा में कहा है न!''जो आत्मा को अबद्धस्पष्ट देखता है, वह समस्त जिनशासन को देखता है। जिसने कर्मबंधन से रहित अपनी दृष्टि करके, वीतराग भाव सम्यग्दर्शन प्रकट किया और जिसको भावश्रुतज्ञान का उपयोग प्रकट हुआ, उसने सम्पूर्ण जैनशासन देख लिया। और जिसने नहीं देखा, उसने कुछ नहीं देखा। वस्तु सदा मुक्त है। वस्तु को बंधन किसप्रकार हो ?यदि वस्तु में बंधन हो, तब तो वस्तु का ही अभाव हो जावे।

आत्मा तो आनन्दकन्द-चैतन्यदल ध्रुव परमात्मा है। उसको बंध कैसा ?

एक समय की पर्याय में रागादि विकार और बंध है, परन्तु वस्तु में बंध कैसा ? आत्मवस्तु त्रिकाल बंधरहित मुक्त है।

यहाँ नवतत्त्वों में एक आत्मतत्त्व कैसा है ? यह बताया जा रहा है।

आत्मा 'मुकन्द' है अर्थात् आत्मा मोक्ष का देनेवाला है। वस्तु स्वयं मुक्तस्वरूप है और पर्याय मे मुक्तिप्रदाता है। ऐसा कहकर व्यवहार मोक्षमार्ग से मुक्ति होती है या निश्चय मोक्षमार्ग से मुक्ति होती है - दोनों बात छोड़ दी हैं। अपनी मुक्ति अर्थात् परमात्म पद का देनेवाला आत्मा स्वयं ही है। जिसमे मुक्ति हो, उसमें से मुक्ति आवे न ! व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह तो राग है, उसमें से तो मुक्ति नहीं आती; परन्तु निश्चय मोक्षमार्ग में से भी मुक्ति नहीं आती। मुक्तिप्रदाता तो द्रव्य है। अन्य परमात्मा इस जीव को मुक्ति दें- यह बात भी व्यवहार से कही जाती है, निश्चय से मुक्ति का दाता अपना द्रव्य ही है। इसप्रकार मुकुन्द का अर्थ हुआ।

अब कहते हैं कि आत्मा वस्तुरूप से 'अमलान' है, परन्तु पर्याय में वर्तमान में राग-द्वेष आदि मलिनता होने से हीन, मुरझाई और विकृतदशा दिखती है, तथापि वस्तु स्वयं कमजोर या मलिन नहीं है। पर्यायदृष्टि से देखने से मानो मैं हीन हो गया, मलिन हो गया अथवा विपरीत हो गया -ऐसा दिखता है; परन्तु वस्तुदृष्टि से देखने पर हीनता, मलिनता या विपरीतता वस्तु के स्वभाव में नहीं है; अतः कहा है कि वस्तु 'अमलान' है। वह पर्याय में मुरझाई हुई दिखती है; परन्तु वस्तु मुरझाई नहीं, हीन नहीं होती; सदा ही एकरूप है, उसकी दृष्टि करने का नाम ही सम्यग्दर्शन है और सम्यग्दर्शन बिना तो सब व्यर्थ है।

पर्याय में मलिनता होने पर भी जो 'अमलान' है, वह द्रव्य है। पर्याय में तो मलिनता है। यदि पर्याय में भी मलिनता न हो तो संसार किसका ? पर्याय में संसार है, परन्तु चैतन्य वस्तु की दृष्टि करे तो प्रभु आत्मा तो 'अमलान' ही है।

भगवान आत्मा 'निराबाध' है, उसमें किसी जाति की बाधा या पीड़ा नहीं है। आत्मा चिद्रस है। ऐसे आत्मा की दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। निमित्त की, राग की और एकसमय की पर्याय की दृष्टि छोड़कर एक निराबाध स्वभाव की दृष्टि करना, वह शुद्ध जीव की दृष्टि है। वर्तमान दशा में राग-द्वेषादि दिखते हैं- इतना ही आत्मा को माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है, वह तो संसार में घूमनेवाला है। यह तो जिसको धर्म करना है और संसार के दुःख का अभाव करना है, उसको ऐसे

निराबाध भगवान आत्मा की दृष्टि करनी कि जिसमें बाधा नहीं, पीड़ा नही, दु:ख नहीं; जो परमात्मस्वरूप निराबाध वस्तु है।

ऐसे आत्मा को कहाँ खोजना ? अरे ! उसे कहीं खोजना जाना पड़े, वैसा नहीं है। वह तो अपनी ही वस्तु है। स्वयं सच्चिदानन्द भगवान आत्मा शाश्वत् आनन्द का घन है, निराबाध है; किन्तु इसने कहीं यह बात सुनी नहीं है। लोग धर्म के नाम पर भी भक्ति, पूजा, दानादि की ही प्रवृत्ति कर रहे हैं और उसी रागप्रवृत्ति में धर्म मानते हैं। जीवों की योग्यता ही ऐसी है। पुण्य की क्रिया में धर्म मानकर उसका सेवन कर रहे हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि जिसमें शरीर नहीं, कर्म नहीं और विकल्प भी जिसमें नहीं ऐसे 'निराबाध' निज आत्मा की दृष्टि करना, उसका नाम प्रथम धर्म की शुरूआत है।

भगवान आत्मा 'निगम' है। इन्द्रियों से या दया, दानादि के शुभविकल्पों से भी आत्मा गम्य नहीं है। अत: उसको निगम कहते हैं। प्रत्येक आत्मा का अन्तर स्वरूप सिद्धभगवान जैसा ही है। ऐसे शुद्ध आत्मा को अन्तर ज्ञान में ज्ञेय बनाकर उसकी प्रतीति करने का नाम सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन का विषय, ऐसा यह भगवान आत्मा 'निगम' है।

आत्मा 'निरंजन' है। उसमें अंजन अर्थात् मैल नहीं है। एकसमय की पर्याय में विकार है और उसमें निमित्तरूप कर्म का सम्बन्ध भी है, वह तो व्यवहारनय का विषय है। वह धर्म का विषय नहीं है।

संसार के विकल्प से रहित होने के कारण आत्मा 'निरविकार' है। चारगति, राग-द्वेष, पुण्य-पाप आदि अनेकप्रकार के उदयभावों से रहित है, अत: निर्विकार है। अस्ति-नास्ति से कहो तो आत्मा अविकार का पिण्ड है और विकार से रहित है। इस तन मन्दिर में जिनदेव विराजते हैं वह धर्म का कारण है। मन्दिर में भगवान विराजते हैं, वे तो पुण्यबंध में कारण हैं, धर्म के नहीं। सम्मेदशिखर आदि तीर्थों की वंदना का भाव आता है न ! वह शुभभाव है। ऐसे भाव आते अवश्य हैं। अशुभ से बचने के लिए ये भाव भले ही हों, परन्तु वे भाव धर्म नहीं है। धर्म तो अपने निर्विकार स्वभाव की निर्विकल्प दृष्टि करना ही है; परन्तु यह धर्म जीव ने अनादिकाल से किया नहीं है और यही करने योग्य है, अन्य कुछ करने योग्य नहीं है -ऐसी श्रद्धा भी नहीं की।

निराकार- जड़ का आकार आत्मा में नहीं है। शरीर के आकार प्रमाण अपना असंख्यप्रदेशी आत्मा का आकार है, किन्तु शरीर के आकार से वह भिन्न है। वह तो शुद्ध चैतन्य अरूपी विज्ञानधन है। उसका अरूपी आकार है। जड़ का आकार उसमें नहीं है। ऐसे आत्मा को दृष्टि में ले, तब उसने आत्मा को जाना और माना कहलाये, इसके सिवाय अन्य सब बिना एक के बिन्दी समान है।

अहा हा.. ! वीतरागदर्शन को समझना जगत को बहुत कठिन पड़ता है।

जैसे काशीघाट के लोटा में पानी भरा है, उस पानी का आकार लोटा जैसा है; परन्तु पानी स्वयं लोटा के अत्यन्त भिन्न आकाररूप रहा है। वैसे ही इस शरीररूपी काशीघाट के लोटा में ज्ञानजल रहता है, उसका आकार शरीर जैसा दिखता है; किन्तु वह आकार न तो शरीर का है और न शरीर के कारण से है। हड्डी, माँस, रुधिर से बने हुए इस शरीर के आकार से ज्ञानानन्दजल का आकार भिन्न है, किन्तु इसे घर के और खिड़की दरवाजों के आकार कैसे होते हैं, उसकी तो खबर होती है; परन्तु अपने आत्मा के आकार की खबर नहीं होती; क्योंकि उसके लिए निवृत्ति नहीं है, फुरसत कहाँ है ? बहुत काम है।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा तो 'संसार शिरोमणि' है। संसार से उर्ध्व रहनेवाला है। काम, क्रोध, मान, माया, दया, दानादि सर्व विकल्पों से पार आत्मा उसका शिरोमणि है। संसार का शिरोमणि यानी संसार का नायक नहीं, संसार से अधिक -भिन्न है। संसार किसको कहते हैं ? राग-द्वेष और मिथ्याभाव, वह संसार; स्त्री-पुत्रादि, वह संसार नहीं; वे तो परवस्तु हैं। यदि वे संसार हों तो देह छूटने के साथ ही संसार छूट जाये, परन्तु ऐसा नहीं है। यह शरीर मेरा, राग-द्वेष मेरे, पुण्य-पाप भाव मेरे -ऐसी मिथ्यामान्यता और राग-द्वेषभाव ही वस्तुतः संसार है।

योगीन्दुदेव ने परमात्मप्रकाश में यह बात ली है कि जो भगवान सिद्ध सर्वगुण सम्पन्न, शुद्ध और आदरणीय न हो तो सर्व संसारी प्राणियों से उर्ध्व किसप्रकार होंगे ? सिद्ध भगवान चौदह ब्रह्माण्ड में सबसे ऊपर लोक के अग्रभाग में रहते हैं, अतः वे संसार शिरोमणि हैं और सिद्ध के समान प्रत्येक आत्मा विकल्प से भिन्न निर्विकल्प वस्तु है; अतः वह भी संसार शिरोमणि है।

अहो ! जहाँ आत्मा विकल्प से भी भिन्न है तो फिर ये मकान किसके ? किसका पुत्र ? किसका शरीर ? किसकी वाणी ? सब भिन्न है। भगवान ! तुम तो आत्मा हो न ! तो त्रिलोकीनाथ भगवान तो जो विकल्प से भी भिन्न है- ऐसे आत्मा को आत्मा कहते हैं।

आत्मा 'सुजान' है अर्थात् सबको जैसा है, वैसा जाननेवाला है; राग को रागरूप, शरीर को शरीररूप और आत्मा को आत्मारूप जैसे भिन्न-भिन्न है, वैसे जाननेवाला है। अत: सुजान अर्थात् चैतन्यरस का पिण्ड है। उसमें पुण्य-पाप के विकार की तो गंध भी नहीं है। पुण्य-पाप तो आस्रवतत्त्व है, शरीर अजीवतत्त्व है और आत्मा स्वयं तो सुजानतत्त्व -जीवतत्त्व है; परन्तु इसे खबर नहीं है। जहाँ स्वयं है, वहाँ शोधता नहीं और जहाँ नहीं, वहाँ अपने को खोजता है। पुण्य की क्रिया में आत्मा को खोजता है, यह तो पहली डोकरी के दृष्टान्त जैसा है कि डोकरी (बुढ़िया) की सुई खोई अँधेरे में और वह खोजती थी अन्यत्र, जहाँ प्रकाश था वहाँ; परन्तु वस्तु जहाँ खोई हो, वहाँ ही ढूँढे तब तो मिले न! वैसे ही आत्मा को राग की क्रिया में खोजने जाये तो मिले? अज्ञान में आत्मा खोया है, अत: ज्ञान करने से वह प्राप्त हो- ऐसा है।

क्रमश:

.....पृष्ठ 15 का शेष

पुण्यप्राप्ति भी नहीं होती और नवतत्त्वों को मानकर वहीं रुका रहे तो वह भी मात्र पुण्यबंध में रुका रहता है, उसे धर्म की प्राप्ति नहीं होती। नवतत्त्वों को मानने के पश्चात् अभेद एक चैतन्यस्वभाव के निकट जाकर अनुभव करे, उसे अपूर्व धर्म प्रगट होता है।

यहाँ तो, जो नवतत्त्वों की व्यवहारश्रद्धा तक आया है - ऐसे शिष्य को परमार्थसम्यग्दर्शन कराने के लिए श्री आचार्यदेव कहते हैं कि तू चैतन्यज्योति वस्तुस्वभाव की अंतर दृष्टि कर। एकरूप चैतन्य की दृष्टि में नवतत्त्व के भंगभेद का विकल्प उपस्थित नहीं होता, किन्तु एक शुद्ध चैतन्य आत्मा ही अनुभव में आता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है, उसी का नाम आत्म साक्षात्कार है और वही धर्म की प्रथम भूमिका है।

अभेद स्वभाव की दृष्टि से देखने पर नवतत्त्व दिखलाई नहीं देते, किन्तु एक आत्मा ही शुद्धरूप से दिखाई देता है, इसलिए भूतार्थनय से देखने पर नवतत्त्वों में एक शुद्ध जीव ही प्रकाशमान है और यही सम्यग्दर्शन का ध्येय है। व्यवहारदृष्टि में नवतत्त्व हैं, किन्तु स्वभावदृष्टि में नवतत्त्व नहीं हैं। स्वभावदृष्टि से ऐसा अनुभव करना ही धर्म है।

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान
श्री देवसेनाचार्य

देवसेन नामक कई आचार्यों का उल्लेख है। उनमें से आप 'दर्शनसार' ग्रन्थ के रचयिता हैं।

आपकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि आपका सम्पर्क धारानगरी से रहा था। वहीं पर आपने दर्शनसार ग्रन्थ रचा था। आपके गुरु-शिष्य या कौटुम्बिक सम्बन्ध में कुछ भी परिचय नहीं मिलता है।

आपने अपनी रचना प्राकृत, संस्कृत व अपभ्रंश भाषा में की है।

आलापपद्धति की रचना लघुनयचक्र के आधार पर की होने से ऐसा निर्णित होता है, कि आपने प्रथम लघुनयचक्र लिखा था।

आपने श्रुतभवन दीपक नयचक्र के अन्त में आत्मानुभव की साधना में प्रक्रिया में नय-व्यवस्था किस भाँति प्रक्षिण होती जाती है—उसका सुन्दर वर्णन किया है।

आपकी रचनाओं में (1) दर्शनसार, (2) आलापपद्धति, (3) लघुनयचक्र, (4) तत्त्वसार, (5) आराधनासार, (6) नयचक्र, (7) श्रुतभवनदीपक नयचक्र भी आपकी रचना प्रतीत होती है।

इतिहासकारों की मान्यता अनुसार आपका काल ई.स. 933-955 प्रतीत होता है।

'दर्शनसार' के रचयिता आचार्य श्री देवसेनस्वामी को कोटि कोटि वन्दन।

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री इन्द्रनन्दि

ईसा की दसवीं शताब्दी के आचार्य इन्द्रनन्दि ऐसे महान आचार्य हैं, कि जिन्होंने निरंतर अपने आत्मज्ञान-ध्यान की मस्ती से, वन में विचरते हुए, स्वयं के बारे में कुछ भी न लिखकर अन्य आचार्य भगवन्तों के बारे में काफी कुछ लिखा। जिससे दिगम्बर जैन आम्नाय के मुनि भगवन्तों व महासमर्थ आचार्य भगवन्तों की परम्परा व उनके सम्बन्ध में यत्किंचित् प्रमाणिक जानकारी मिल पाती है।

भगवान महावीर से करीबन 1400 वर्ष पश्चात् (ईसा की दसवीं शताब्दी) के आप नन्दिसंघ देशीयगणीय आचार्य थे। आपके दीक्षागुरु का नाम वासवनन्दि के शिष्य बप्पनन्दि था। आपके शिक्षागुरु का नाम अभयनन्दि था व आप आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के ज्येष्ठ गुरुभाई समान थे।

इन्द्रनन्दि आचार्य ने (1) नीतिसार, (2) समयभूषण, (3) इन्द्रनन्दि संहिता, (4) मुनि प्रायश्चित प्राभृत, (5) प्रतिष्ठापाठ, (6) पूजाकल्प, (7) शान्तिचक्र पूजा, (8) अंकुरारोपण, (9) प्रतिमा संस्कारारोपण पूजा; (10) ज्वालामालिनी, (11) औषधिकल्प, (12) भूमिकल्प, (13) श्रुतावतार आदि शास्त्रों की रचना की है।

वैसे भगवान महावीर के पश्चात् दिगम्बर जैन आचार्यों की मूल परम्परा के इतिहास को 'श्रुतावतार' कहा जाता है। ऐसे 'श्रुतावतार' कुछ आचार्यों ने लिखे हैं। उसमें आचार्य इन्द्रनन्दि का 'श्रुतावतार' प्राकृत गाथाबद्ध है। वैसा ही ई.स. 1400 में होनेवाले आचार्य श्रीधरजी ने भी श्रुतावतार रचा है। फिर भी आचार्य इन्द्रनन्दि का 'श्रुतावतार' विशेष प्राचीन है।

आप ई.स. 939 के आचार्य थे ऐसा इतिहासकारों का मानना है।

'श्रुतावतार' के रचयिता आचार्य इन्द्रनन्दि भगवन्त को कोटि-कोटि वन्दन।

समाचार-दर्शन

एक दिवसीय राष्ट्रीय वेबिनार सम्पन्न

वीर शासन जयन्ती के अवसर पर उत्तरप्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान (संस्कृति विभाग उत्तरप्रदेश) लखनऊ के तत्त्वावधान में **एक दिवसीय राष्ट्रीय वेबिनार संगोष्ठी 08 जुलाई 2020** को आयोजन किया गया। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में विषय **तीर्थंकर महावीर और उनकी देशना** का आयोजन किया गया। जिसका संचालन प्रो. अभयकुमार जैन ने किया।

इस एक दिवसीय राष्ट्रीय वेबिनार के प्रमुख सूत्रधार प्रो. (डॉ.) अभयकुमार जैन, डॉ. राकेश सिंह, लखनऊ थे। जिसमें मुख्य उद्बोधन श्री पवन जैन, मंगलायतन; पण्डित विजय जैन; श्रीमती पत्रिका जैन डॉ. इन्दु जैन, डॉ. सुशील जैन, डॉ. योगेश जैन अलीगंज; डॉ. महेन्द्र जैन, मुम्बई; डॉ. अनेकान्त जैन, दिल्ली और पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री मंगलायतन आदि ने भगवान महावीर और उनकी देशना वर्तमान में कार्यकारी है इस विषय पर सभी वक्ताओं ने ऑनलाईन वक्तव्य प्रस्तुत किया।

अन्त में कार्यक्रम का समापन करते हुए संस्थान के निर्देशक डॉ. राकेश सिंह ने कहा कि भगवान महावीर के सिद्धान्त हम सभी जीवों के लिये उपयोगी हैं। जिसका सभी ने हृदय से आभार व्यक्त किया और इसी प्रकार ऐसी गोष्ठियाँ आयोजित की जानी चाहिए।

श्री दिगम्बर जैन दिव्यदेशना ट्रस्ट दिल्ली एवं

दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल दिल्ली द्वारा आयोजित

ऑनलाईन श्री समयसार विद्वत संगोष्ठी सानन्द सम्पन्न

दिल्ली : देश के अनेकानेक विद्वानों के सहयोग से डॉ. राकेश शास्त्री (निर्देशक), पण्डित संयम शास्त्री, नागपुर; पण्डित ऋषभ शास्त्री, दिल्ली; पण्डित नवीन शास्त्री, दिल्ली; पण्डित जिनेश सेठ, पण्डित ऋषभ शास्त्री, दिल्ली; पण्डित अमन शास्त्री, पण्डित अनुभव शास्त्री, खनियाधाना; विदुषी प्रज्ञाजी, देवलाली; मंगलार्थी शुभम जैन, झांसी आदि के सहयोग से सम्पूर्ण समयसार परमागम पर देश के उच्च कोटि के विद्वानों द्वारा 12 जुलाई से 15 जुलाई 2020 तक सम्पन्न हुई।

प्रतिदिन प्रात: 07.00 बजे से पूजन, प्रक्षाल, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन, व्याख्यानमाला आदि रात्रि 10.00 बजे तक तीन सत्रों में चलनेवाली इस गोष्ठी में कुल 15 सत्रों में लगभग 55 विद्वानों द्वारा और डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल आदि विशिष्ट

विद्वानों द्वारा इस गोष्ठी का लाभ देश के अनेकानेक मुमुक्षुओं ने लिया। अन्तिम दिन श्री पवन जैन, मंगलायतन का व्याख्यानमाला में व्याख्यान भी हुआ।

सम्पूर्ण कार्यक्रम श्री अजितप्रसादजी दिल्ली की अध्यक्षता एवं श्री अजित जैन, बड़ोदरा के विशिष्ट आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। तकनीकी सहयोग पण्डित संजय शास्त्री सर्वोदय अहिंसा अभियान जयपुर एवं पण्डित विनीत शास्त्री का रहा।

एक दिवसीय संगोष्ठी सम्पन्न

मध्यकालीन साहित्य और पण्डित दौलतरामजी की छहढाला... परिचर्चा

पण्डित गणतन्त्र शास्त्री, आगरा के संयोजकत्व एवं पण्डित अंकुर शास्त्री, पण्डित अभिषेक शास्त्री, भोपाल के संचालन में छहढाला विषय पर डॉ. वीरसागर जैन, दिल्ली ने छहढाला के विभिन्न पहलुओं, पण्डित दौलतरामजी के चरित्र चित्रण की विशेषताएँ एवं जैनसाहित्य में छहढाला का स्थान इस विषय पर सारगर्भित परिचर्चा की। प्रथम ढाल का वांचन मंगलार्थी दिव्य जैन, मंगलायतन; दीया जैन दिल्ली के द्वारा मंगलाचरण किया गया। अध्यक्षता श्री विजयजी बड़जात्या इन्दौर के द्वारा की गयी। ऑनलाईन तकनीकी सहयोग पण्डित संजय शास्त्री सर्वोदय अहिंसा अभियान जयपुर एवं पण्डित विनीत शास्त्री का रहा।

संयमरूपी कल्पवृक्ष की शीतल छाया में

बाहर से देखने पर मुनिराज भले ही सूर्य के प्रचण्ड ताप में, शरीर जल जाता हो – ऐसे ताप में ध्यान करते हों परन्तु अन्दर में वे स्वरूप रमणतारूप कल्पवृक्ष की शीतल छाया में विराज रहे हैं। अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्दस्वभावी भगवान आत्मा के उग्र अवलम्बन से पर्याय में प्रगट जो अतीन्द्रिय आनन्द की शीतल छाया, उसमें मुनिराज विराजमान हैं।

कल्पवृक्ष सम संयम केरी, अति शीतल ज्या छाया जी।
चरण-करण गुणधार, महामुनि मधुकर मन लोभाया जी॥

मुनिराज, सूर्य के प्रचण्ड ताप में नहीं, अपितु शीतलस्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई संयम की कल्पवृक्षसम शीतल छाया में विराजमान हैं।

(वचनामृत प्रवचन, भाग 4, पृष्ठ 195)

तीर्थधाम मङ्गलायतन का सुयश

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्रों का (डीपीएस, सीबीएसई बोर्ड) कक्षा 10 एवं 12 का लौकिक परीक्षा परिणाम शत-प्रतिशत रहा है। ध्यान रहे सभी मङ्गलार्थी तीर्थधाम मङ्गलायतन में रहकर प्रात: 05.00 बजे से धार्मिक कक्षाओं, पूजन, सीडी स्वाध्याय आदि सभी गतिविधियों में सम्पूर्ण उपस्थिति के साथ शामिल रहते हैं। मङ्गलायतन परिवार सभी के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

कक्षा 10वीं के होनहार मङ्गलार्थी

मङ्गलार्थी सम्यक् जैन
सहारनपुर (89.67%)

मङ्गलार्थी ऋषभ जैन
(89.17%)

मङ्गलार्थी आदित्य जैन
(88.67%)

मङ्गलार्थी वरांग जैन
(87.83%)

मङ्गलार्थी रचित जैन
(85.17%)

मङ्गलार्थी अपूर्व जैन
(85.00%)

मङ्गलार्थी सम्यक् जैन
सागर (84.33%)

मङ्गलार्थी आयुष जैन
(83.83%)

मङ्गलार्थी तनिष्क बुखारिया
(82.50%)

मङ्गलार्थी आर्जव जैन
(80.83%)

मङ्गलार्थी कृतिकराज जैन
(76.50%)

मङ्गलार्थी संचार जैन
(74.00%)

मङ्गलार्थी आश्रय जैन
(74.00%)

मङ्गलार्थी सम्यक जैन
शिकोहाबाद (65.00%)

कक्षा 12वीं के होनहार मङ्गलार्थी

मङ्गलार्थी प्रणव जैन
(96.00%)

मङ्गलार्थी सिद्धार्थ जैन
(95.00%)

मङ्गलार्थी सूर्यांश ठगन
(95.00%)

मङ्गलार्थी आयुष जैन
(92.00%)

मङ्गलार्थी रीतेश जैन
(90.00%)

मङ्गलार्थी प्रांजल जैन
(85.00%)

मङ्गलार्थी आगम जैन
सागर (81%)

मङ्गलार्थी सम्यक मोदी
(81.00%)

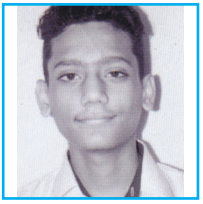

मङ्गलार्थी संस्कार जैन
(77.00%)

मङ्गलार्थी श्रेष्ठ जैन
(95.00%)

वैराग्यसमाचार

जामनगर : श्री त्र्यम्बकभाई वादर जामनगर का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामों से हो गया है। आप विपिनभाई वादर के पिताश्री थे। आप पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रदत्त तत्त्वज्ञान से ओतप्रोत थे। आपके परिवार ने गुरुदेवश्री के कारण ही सम्प्रदाय परिवर्तन किया। वादर परिवार जामनगर मुमुक्षु मण्डल का आधार है।

जबेरा : पण्डित आशीष शास्त्री का शारीरिक अस्वस्थता के कारण देहपरिवर्तन हो गया है। आप पण्डित श्री टोडरमल स्मारक जयपुर के 24वें बैच के होनहार, तार्किक विद्यार्थी थे।

सहारनपुर : श्री सुरेशचन्द्र जैन का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामों से हो गया है। आपका तीर्थधाम मंगलायतन से विशेष लगाव था।

बिजौलियां : श्रीमती मनोरमा लुहाड़िया धर्मपत्नी श्री मनोहरलाल लुहाड़िया का शारीरिक अस्वस्थता के कारण देहपरिवर्तन हो गया है। आप पण्डित अशोक लुहाड़िया की भाभीश्री थी।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हों—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

पाठकों से निवेदन

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए मङ्गलायतन पत्रिका नहीं छप पा रही है। अत: आप www.mangalayatan.com / पत्रिका ऐप से पढ़ सकते हैं। आपको हुई परेशानी के लिए खेद है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन की वेबसाईट का नवीनीकरण.....

तीर्थधाम मङ्गलायतन की वेबसाईट (www.mangalayatan.com) पर प्राचीन आचार्यों एवं पण्डित, विद्वानों द्वारा रचित हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ और वर्तमान में मङ्गलायतन द्वारा प्रकाशित सत्साहित्य उपलब्ध है। जो भी साधर्मी लाभ लेना चाहे। वह इनको डाउनलोड कर उपयोग में ले सकते हैं।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर स्वाध्याय की अद्भुत शृंखला तैयार की जा रही है। आप सभी YouTube पर Teerthdham Mangalayatan, Aligarh Channel को Subscribe कर इन स्वाध्याय का लाभ ले सकते हैं तथा मङ्गलायतन में आयोजित भक्ति, अन्य विद्वानों के स्वाध्याय का भी लाभ ले सकते हैं।
Link -
https://www.youtube.com/channel/UCwxazHz6NGTe6TQCMx8C5sQ

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना-प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** सत्रह वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे-भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम - **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आपको प्रतिमाह, मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं।

मङ्गलायतन का प्रतिमाह का खर्च, लगभग दस लाख रुपये है। इस योजना के माध्यम से आप हमें प्रतिमाह 1,000 (प्रतिवर्ष 1000X12=12,000) रुपये दानस्वरूप देंगे। भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व-पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें - ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

सम्पर्क-सूत्र : 9756633800 (सुधीर शास्त्री)
email - info@mangalayatan.com

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की आजीवन सदस्यता स्वीकार करता हूँ, मैं प्रतिमाह एक हजार रुपये **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आजीवन जमा करवाता रहूँगा।

हस्ताक्षर

यह राशि आप प्रतिमाह दिनांक पहली से दस तक निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	: SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	: HDFC BANK
BRANCH	: RAMGHAT ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	: 50100263980712
RTGS/NEFTS IFS CODE	: HDFC0000380
PAN NO.	: AABTA0995P

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

नवीन प्रकाशन - मोक्षमार्गप्रकाशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रथम बार **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुनः मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।** जो मुमुक्षु संस्था, समाज स्वाध्याय हेतु मंगाना चाहते हैं। वे डाकखर्च देकर, निःशुल्क मंगा सकते हैं।

छहढाला (हिन्दी) नवीन संस्करण **सशुल्क**

ग्रन्थ मँगाने का पता— प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन,
अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

तीर्थधाम मङ्गलायतन
सत्साहित्य मँगायें

नि:शुल्क मँगायें (मात्र डाकखर्च देकर)

मंगल समर्पण

मोक्षमार्गप्रकाशक (नवीन संशोधित)

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला (छह भाग)

(पण्डित कैलाशचन्द्रजी जैन द्वारा संकलित)

50 प्रतिशत छूट के साथ मँगायें

छहढाला (रंगीन सचित्र, अंग्रेजी)

25 प्रतिशत छूट के साथ मँगायें

स्वतन्त्रता की घोषणा

स्वाधीनता का शंखनाद

भक्तामर रहस्य

पंचास्तिकाय संग्रह

छहढाला (रंगीन सचित्र, हिन्दी)

पंच कल्याणक प्रवचन

आध्यात्मिक पाठ संग्रह

वैराग्य उपावन माही...

दशधर्म प्रवचन

वह घड़ी कब आयेगी ?

साहित्य मँगाने का पता -

तीर्थधाम मङ्गलायतन

अलीगढ़-आगरा रोड, सासनी-204216 (हाथरस)(उ.प्र.)

मोबा : 9997996346, 9756633800

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

आत्मज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित दशा

अहा! आषाढ़ माह की घनघोर मेघ से भरपूर रात हो, जङ्गल में चारों ओर गहन अन्धकार व्याप्त हो परन्तु मुनिराज को अन्दर आत्मा में आत्मज्ञान में, आत्मानुभूति में प्रकाश व्याप्त हो गया है। अहा! जो चैतन्य की अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमें से अर्थात् उनके उग्र अवलम्बन से मुनिराज को प्रकाश का ज्वार आया है। बाहर में भले ही अन्धकार हो परन्तु अन्दर में उन्हें आत्मज्ञान का अनुपम प्रकाश फैल गया है।

(वचनामृत प्रवचन, भाग 4, पृष्ठ 195)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com